International Journal of Social Science and Education Research

ISSN Print: 2664-9845
ISSN Online: 2664-9853
Impact Factor: RJIF 8.42
IJSSER 2025; 7(2): 951-955
www.socialsciencejournals.net
Received: 17-09-2025
Accepted: 20-10-2025

Doly Kumari
Research Scholar, University Department of Industrial Relations & Personnel Management (IRPM), Tilka Manjhi Bhagalpur University, Bhagalpur, Bihar, India

Dr. Sujit Kumar
University Department of Industrial Relations & Personnel Management (IRPM), Tilka Manjhi Bhagalpur University, Bhagalpur, Bhagalpur, Bihar, India

Corresponding Author:
Doly Kumari
Research Scholar, University Department of Industrial Relations & Personnel Management (IRPM), Tilka Manjhi Bhagalpur University, Bhagalpur, Bihar, India

सामाजिक पुनरुत्पादन का आधार: महरियों (दाइयों) की भूमिका का वैश्विक–भारतीय सैद्धांतिक दृष्टिकोण

Doly Kumari and Sujit Kumar

DOI: https://doi.org/10.33545/26649845.2025.v7.i2l.461

सारांश

सामाजिक पुनरुत्पादन (Social Reproduction) का सिद्धांत समाज के उन अदृश्य श्रम–प्रक्रियाओं को समझने का प्रयास करता है, जिनके माध्यम से श्रम–शक्ति का जैविक, सामाजिक और सांस्कृतिक पुनर्निर्माण होता है। इस संदर्भ में महरियाँ (दाइयाँ) मातृत्व, प्रसव और देखभाल–कार्य के माध्यम से सामाजिक पुनरुत्पादन की एक केंद्रीय, किंतु उपेक्षित कड़ी के रूप में उभरती हैं। वैश्विक स्तर पर नारीवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र ने दाई–कार्य को स्त्री–केन्द्रित देखभाल–श्रम के रूप में चिन्हित किया है, जिसे पूंजीवादी व्यवस्था ने आवश्यक होते हुए भी अवैतनिक या अल्प–मूल्यवान श्रम के रूप में स्थापित किया।

भारतीय संदर्भ में महरियों की भूमिका ऐतिहासिक, जातिगत और लैंगिक संरचनाओं से गहराई से जुड़ी रही है। परंपरागत समाज में महरियाँ केवल प्रसव–सहायिका नहीं थीं, बल्कि वे सामाजिक निरंतरता, सामुदायिक स्वास्थ्य और सांस्कृतिक पुनरुत्पादन की वाहक थीं। किंतु औपनिवेशिक काल, चिकित्सा के पेशेवरकरण और आधुनिक राज्य–नीतियों के हस्तक्षेप के साथ दाई–कार्य को "अवैज्ञानिक" घोषित कर दिया गया, जिससे यह श्रम औपचारिक स्वास्थ्य तंत्र से बाहर हो गया। परिणामस्वरूप महरियाँ सामाजिक पुनरुत्पादन की भूमिका निभाती रहीं, किंतु आर्थिक, सामाजिक और नीतिगत स्तर पर अदृश्य बना दी गईं।

यह शोधपत्र तर्क प्रस्तुत करता है कि महरियों की भूमिका को समझे बिना न तो मातृ–स्वास्थ्य की संपूर्ण व्याख्या संभव है और न ही सामाजिक न्याय की। वैश्विक नारीवादी सिद्धांत और भारतीय सामाजिक यथार्थ के संवाद के माध्यम से यह अध्ययन यह स्थापित करता है कि महरियाँ सामाजिक पुनरुत्पादन की आधार–शिला हैं, और उनका पुनर्समावेशन केवल स्वास्थ्य–नीति का नहीं, बल्कि समानता, गरिमा और श्रम–अधिकारों का प्रश्न है।

मार्क्सवादी–नारीवादी सिद्धांत सामाजिक पुनरुत्पादन को उस केन्द्रीय प्रक्रिया के रूप में देखता है, जिसके माध्यम से श्रम–शक्ति का जैविक, सामाजिक और सांस्कृतिक पुनर्निर्माण होता है। यह सिद्धांत यह स्पष्ट करता है कि पूंजीवादी अर्थव्यवस्था केवल कारखानों, बाज़ारों और वेतन–आधारित श्रम पर नहीं टिकी होती, बल्कि उसके अस्तित्व के लिए अवैतनिक, कम–मूल्यवान और स्त्री–केन्द्रित देखभाल–श्रम अनिवार्य होता है। इस संदर्भ में महरियाँ (दाइयाँ) सामाजिक पुनरुत्पादन की एक ऐसी आधारभूत कड़ी हैं, जिनका श्रम जीवन के आरंभिक क्षणों—गर्भावस्था, प्रसव और प्रसवोत्तर देखभाल—से जुड़ा हुआ है, किंतु जिन्हें ऐतिहासिक रूप से अदृश्य और अवमूल्यित किया गया है।

वैश्विक स्तर पर नारीवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र ने दाई–कार्य को केयर वर्क (Care Work) और रिप्रोडक्टिव लेबर (Reproductive Labour) के रूप में विश्लेषित किया है, जिसे पूंजीवाद ने आवश्यक होते हुए भी आर्थिक मान्यता से वंचित रखा। भारतीय संदर्भ में यह श्रम जाति, लिंग और गरीबी की संरचनाओं से और अधिक जटिल हो जाता है। प्रस्तुत शोधपत्र यह तर्क प्रस्तुत करता है कि महरियाँ सामाजिक पुनरुत्पादन की रीढ़ हैं, और उनकी उपेक्षा न केवल स्त्री–श्रम के अवमूल्यन को दर्शाती है, बल्कि विकास, स्वास्थ्य और सामाजिक न्याय की नीतियों की सीमाओं को भी उजागर करती है।

कुटशब्द: सामाजिक पुनरुत्पादन, महरियाँ (दाइयाँ), मार्क्सवादी–नारीवाद, देखभाल–कार्य, स्त्री–श्रम, वैश्विक–भारतीय दृष्टिकोण

1. प्रस्तावना

मार्क्सवादी सिद्धांत में श्रम को सामाजिक उत्पादन और आर्थिक संरचना का मूल आधार माना गया है। कार्ल मार्क्स ने यह स्पष्ट किया कि पूंजीवादी समाज में मूल्य का सृजन श्रम के माध्यम से होता है और उत्पादन–स्थलों पर होने वाला श्रम वर्ग–संबंधों और शोषण की केंद्रीय इकाई है। किंतु पारंपरिक मार्क्सवादी विश्लेषण लंबे समय तक उस श्रम तक सीमित रहा जो प्रत्यक्ष रूप से बाज़ार, उद्योग और वस्तु–उत्पादन से जुड़ा हुआ था। इस दृष्टिकोण में उन प्रक्रियाओं को गौण मान लिया गया, जो श्रमिक के निर्माण और उसके श्रम–सक्षम बने रहने के लिए आवश्यक होती हैं। परिणामस्वरूप श्रम की एक बड़ी दुनिया—जो घर, समुदाय और देखभाल–कार्य के क्षेत्र में संचालित होती है—सैद्धांतिक और विश्लेषणात्मक रूप से अदृश्य बनी रही।

नारीवादी विचारकों ने इस सीमित समझ की तीखी आलोचना करते हुए यह बुनियादी प्रश्न उठाया कि वह श्रम कौन करता है जो श्रमिक को श्रम करने योग्य बनाता है।

जन्म, पालन–पोषण, पोषण, देखभाल, भावनात्मक संबल और दैनिक पुनर्निर्माण—ये सभी प्रक्रियाएँ श्रम–शक्ति के अस्तित्व और निरंतरता के लिए अनिवार्य हैं, किंतु इन्हें लंबे समय तक "प्राकृतिक" या "घरेलू" मानकर आर्थिक विश्लेषण से बाहर रखा गया। इसी आलोचनात्मक हस्तक्षेप से सामाजिक पुनरुत्पादन सिद्धांत का विकास हुआ, जिसने यह स्थापित किया कि पूंजीवादी अर्थव्यवस्था केवल उत्पादक श्रम पर नहीं, बल्कि अवैतनिक और कम–मूल्यवान पुनरुत्पादक श्रम पर भी निर्भर करती है।

इस सैद्धांतिक ढाँचे में महरियाँ (दाइयाँ) सामाजिक पुनरुत्पादन की केंद्रीय कड़ी के रूप में उभरती हैं। वे जीवन के सबसे निर्णायक क्षण—जन्म—से जुड़ी होती हैं और श्रम–शक्ति के जैविक पुनरुत्पादन में प्रत्यक्ष भूमिका निभाती हैं। दाई–कार्य केवल तकनीकी या चिकित्सकीय हस्तक्षेप नहीं है, बल्कि यह देखभाल, अनुभवजन्य ज्ञान, भावनात्मक श्रम और सामुदायिक विश्वास का समन्वित रूप है। इसके बावजूद महरियों का श्रम न तो राष्ट्रीय आय के आँकड़ों में स्थान पाता है और न ही श्रम–नीतियों या विकास–विमर्श में इसे समुचित महत्व दिया जाता है।

यही सैद्धांतिक विरोधाभास इस शोधपत्र की मूल समस्या–वस्तु है। एक ओर महरियाँ सामाजिक पुनरुत्पादन की आधारशिला हैं, वहीं दूसरी ओर उनका श्रम अदृश्य, अवमूल्यित और संस्थागत रूप से उपेक्षित बना हुआ है। यह शोधपत्र मार्क्सवादी–नारीवादी दृष्टिकोण के माध्यम से इसी विरोधाभास को समझने और विश्लेषित करने का प्रयास करता है, ताकि यह स्पष्ट किया जा सके कि महरियों की भूमिका को समझे बिना न तो श्रम की संपूर्ण अवधारणा विकसित की जा सकती है और न ही सामाजिक न्याय तथा समानता के व्यापक लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है।

2. सामाजिक पुनरुत्पादन का सिद्धांत: एक सैद्धांतिक रूपरेखा

सामाजिक पुनरुत्पादन सिद्धांत (Social Reproduction Theory) इस मूल मान्यता पर आधारित है कि किसी भी समाज का अस्तित्व और निरंतरता केवल वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन से नहीं, बल्कि मनुष्यों के निरंतर पुनरुत्पादन से संभव होती है। यह सिद्धांत उत्पादन और पुनरुत्पादन के बीच कृत्रिम विभाजन को अस्वीकार करता है और यह स्थापित करता है कि श्रम–शक्ति का निर्माण, संरक्षण और पुनर्निर्माण स्वयं में एक सामाजिक और ऐतिहासिक प्रक्रिया है। इसमें जैविक पुनरुत्पादन अर्थात जन्म, श्रम–शक्ति का दैनिक और पीढ़ीगत पुनर्निर्माण, तथा देखभाल, भावनात्मक श्रम और सामाजिकरण जैसी गतिविधियाँ सम्मिलित हैं, जो समाज के संचालन के लिए अनिवार्य होते हुए भी लंबे समय तक आर्थिक विश्लेषण से बाहर रखी गईं।

मार्क्सवादी–नारीवादी दृष्टिकोण यह स्पष्ट करता है कि पूंजीवादी अर्थव्यवस्था उत्पादन के क्षेत्र में होने वाले वेतन–आधारित श्रम पर जितनी निर्भर है, उतनी ही—यदि उससे अधिक नहीं—वह उन अवैतनिक या कम–मूल्यवान श्रम प्रक्रियाओं पर निर्भर करती है, जो घर और समुदाय के भीतर संपन्न होती हैं। सिल्विया फेडेरिची और लिज़ वोगेल जैसे विचारकों ने तर्क दिया कि यदि पुनरुत्पादन श्रम को पूरी तरह बाज़ार के नियमों के अनुसार भुगतान किया जाए, तो पूंजीवादी व्यवस्था के लिए मुनाफ़ा बनाए रखना कठिन हो जाएगा। इसीलिए पूंजीवाद संरचनात्मक रूप से इस श्रम को "प्राकृतिक", "पारिवारिक" या "नैतिक दायित्व" के रूप में प्रस्तुत करता है, ताकि इसे आर्थिक मान्यता से वंचित रखा जा सके।

नैंसी फ्रेज़र ने सामाजिक पुनरुत्पादन सिद्धांत को आगे बढ़ाते हुए यह अवधारणा प्रस्तुत की कि समकालीन पूंजीवाद एक सामाजिक पुनरुत्पादन संकट (Crisis of Social Reproduction) से गुजर रहा है। उनके अनुसार राज्य और बाज़ार दोनों पुनरुत्पादन श्रम पर निर्भर तो हैं, किंतु उसके संरक्षण और समर्थन के लिए पर्याप्त संसाधन उपलब्ध नहीं कराते। परिणामस्वरूप देखभाल–कार्य करने वाले वर्ग—विशेषकर स्त्रियाँ और हाशियाकृत समुदाय—अत्यधिक दबाव और असुरक्षा की स्थिति में पहुँच जाते हैं।

इस सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य में सामाजिक पुनरुत्पादन को केवल पारिवारिक या निजी क्षेत्र की गतिविधि नहीं, बल्कि एक राजनीतिक–आर्थिक प्रश्न के रूप में देखा जाता है। यह दृष्टिकोण यह समझने में सहायता करता है कि महरियों (दाइयों) जैसे श्रमिक क्यों सामाजिक रूप से आवश्यक होते हुए भी आर्थिक और नीतिगत रूप से उपेक्षित रहते हैं। अतः सामाजिक पुनरुत्पादन सिद्धांत महरियों की भूमिका को समझने के लिए एक प्रभावशाली वैचारिक ढाँचा प्रदान करता है, जो उत्पादन, श्रम और सामाजिक न्याय के बीच के अंतर्संबंधों को उजागर करता है।

3. दाई–कार्य और सामाजिक पुनरुत्पादन: वैश्विक परिप्रेक्ष्य

वैश्विक स्तर पर दाइयों (Midwives) की भूमिका ऐतिहासिक रूप से समुदाय–आधारित सामाजिक पुनरुत्पादन व्यवस्था का एक अभिन्न अंग रही है। यूरोप, अफ्रीका, लैटिन अमेरिका और एशिया के विभिन्न समाजों में आधुनिक जैव–चिकित्सकीय प्रणाली के उदय से पूर्व दाइयाँ गर्भावस्था, प्रसव और प्रसवोत्तर देखभाल की प्रमुख प्रदाता थीं। उनका ज्ञान औपचारिक संस्थानों में अर्जित नहीं किया जाता था, बल्कि अनुभव, परंपरा और सामुदायिक अभ्यास के माध्यम से विकसित होता था। इस ज्ञान–प्रणाली में स्थानीय पर्यावरण, पोषण, सामाजिक संबंधों और स्त्री–अनुभवों की गहरी समझ निहित थी, जिससे दाई–कार्य सामाजिक पुनरुत्पादन की प्रक्रिया को समुदाय–स्तर पर सुदृढ़ बनाता था[1]।

यूरोप में सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी के दौरान चिकित्सा के संस्थानीकरण और वैज्ञानिक तर्कशीलता के उदय के साथ दाइयों की सामाजिक स्थिति में गिरावट आने लगी। चिकित्सा ज्ञान को पुरुष–प्रधान विश्वविद्यालयों और पेशेवर संस्थानों के अधीन कर दिया गया, जिसके परिणामस्वरूप दाइयों के अनुभवजन्य ज्ञान को "अवैज्ञानिक" और "अप्रशिक्षित" घोषित किया गया[2]। इसी प्रकार औपनिवेशिक शासन के अंतर्गत एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका में पश्चिमी चिकित्सा पद्धतियों को "आधुनिक" और "श्रेष्ठ" बताकर लागू किया गया, जबकि स्थानीय दाई–प्रणालियों को पिछड़ा और असुरक्षित माना गया[3]। यह प्रक्रिया केवल स्वास्थ्य–सुधार की नहीं थी, बल्कि ज्ञान, सत्ता और सामाजिक नियंत्रण की भी थी।

मार्क्सवादी–नारीवादी दृष्टिकोण इस परिवर्तन को पूंजीवादी पुनर्रचना की प्रक्रिया के रूप में देखता है, जहाँ सामाजिक पुनरुत्पादन को नियंत्रित और विनियमित करने की आवश्यकता ने चिकित्सा को संस्थागत रूप प्रदान किया। दाइयों को हाशिये पर डालकर प्रसव–सेवा को अस्पतालों, उपकरणों और शुल्क–आधारित प्रणालियों से जोड़ा गया, जिससे यह सेवा धीरे–धीरे पूंजी–आधारित बन गई[4]। इस प्रक्रिया में स्त्री–केन्द्रित और सामुदायिक देखभाल–कार्य को पुरुष–प्रधान पेशेवर चिकित्सा ने प्रतिस्थापित किया, जिससे दाई–कार्य की सामाजिक मान्यता और स्वायत्तता का क्षरण हुआ।

इस प्रकार वैश्विक स्तर पर दाइयों का हाशियाकरण केवल चिकित्सकीय दक्षता के प्रश्न तक सीमित नहीं था, बल्कि यह सामाजिक पुनरुत्पादन पर नियंत्रण स्थापित करने की एक व्यापक राजनीतिक–आर्थिक रणनीति का हिस्सा था। दाई–कार्य को "अनौपचारिक" और "अवैज्ञानिक" घोषित करना वास्तव में उस श्रम को अदृश्य बनाने की प्रक्रिया थी, जो पूंजीवादी व्यवस्था के लिए अनिवार्य होते हुए भी स्वतंत्र और सामुदायिक स्वरूप में संचालित होता था[5]। यह वैश्विक परिप्रेक्ष्य यह समझने में सहायता करता है कि महरियों का वर्तमान संकट स्थानीय या आकस्मिक नहीं, बल्कि ऐतिहासिक और संरचनात्मक है।

4. मार्क्सवादी–नारीवादी विश्लेषण: दाई–कार्य क्यों अदृश्य है?

मार्क्सवादी–नारीवादी दृष्टिकोण के अनुसार दाई–कार्य का अदृश्य होना आकस्मिक या केवल प्रशासनिक उपेक्षा का परिणाम नहीं है, बल्कि यह

[1] Oakley, A. (1984). The captured womb: A history of the medical care of pregnant women. Oxford: Basil Blackwell.
[2] Ehrenreich, B., & English, D. (1973). Witches, midwives, and nurses: A history of women healers. New York: Feminist Press.
[3] Van Hollen, C. (2003). Birth on the threshold: Childbirth and modernity in South India. Berkeley: University of California Press.
[4] Federici, S. (2004). Caliban and the witch: Women, the body and primitive accumulation. New York: Autonomedia.
[5] Fraser, N. (2016). Contradictions of capital and care. New Left Review, 100, 99–117.

पूंजीवादी–पितृसत्तात्मक व्यवस्था की संरचनात्मक विशेषता है। यह दृष्टिकोण यह स्पष्ट करता है कि कुछ प्रकार के श्रम को सामाजिक रूप से आवश्यक मानते हुए भी उन्हें आर्थिक, नीतिगत और सांख्यिकीय स्तर पर अदृश्य बना दिया जाता है। दाई–कार्य इसी श्रेणी का श्रम है। इसके अदृश्यकरण के पीछे तीन प्रमुख कारण कार्यरत हैं—इसका पुनरुत्पादक स्वरूप, इसका स्त्री–केन्द्रित होना और इसका समुदाय–आधारित ढाँचा।

पहला कारण यह है कि दाई–कार्य पुनरुत्पादक श्रम (Reproductive Labour) है, न कि प्रत्यक्ष रूप से उत्पादक श्रम। मार्क्सवादी अर्थशास्त्र में उत्पादक श्रम वह माना गया है जो वस्तु–उत्पादन या अधिशेष मूल्य (Surplus Value) के सृजन से जुड़ा हो। दाई–कार्य प्रत्यक्ष रूप से कोई वस्तु नहीं बनाता, बल्कि श्रम–शक्ति के जैविक पुनरुत्पादन—अर्थात नए श्रमिक के जन्म—से जुड़ा होता है। इस कारण इसे पूंजीवादी गणना–तंत्र में "अमूल्य" या "गैर–उत्पादक" मान लिया जाता है[6]। मार्क्सवादी–नारीवादी विचारकों ने यह तर्क दिया है कि यदि इस श्रम को उसका वास्तविक सामाजिक मूल्य दिया जाए, तो पूंजीवादी उत्पादन–प्रणाली की लाभ–संरचना ही अस्थिर हो जाएगी।

दूसरा कारण यह है कि दाई–कार्य स्त्री–केन्द्रित श्रम है। ऐतिहासिक रूप से स्त्रियों द्वारा किए गए श्रम को "प्राकृतिक", "सहज" या "कर्तव्य" के रूप में प्रस्तुत किया गया, जिससे उसके लिए पारिश्रमिक की माँग को अनुचित ठहराया गया[7]। प्रसव–सेवा को मातृत्व और स्त्री–संवेदना से जोड़कर यह मान लिया गया कि यह कार्य पेशागत दक्षता नहीं, बल्कि स्त्री–स्वभाव का विस्तार है। इस दृष्टिकोण ने दाई–कार्य को एक पेशे के रूप में मान्यता मिलने से रोका और उसके बाज़ारी मूल्य को लगातार कम किया। इस प्रकार लैंगिक विचारधारा ने दाई–कार्य के आर्थिक अवमूल्यन को वैचारिक वैधता प्रदान की।

तीसरा कारण यह है कि दाई–कार्य मुख्यतः समुदाय–आधारित होता है और राज्य तथा बाज़ार की प्रत्यक्ष निगरानी से बाहर संचालित होता है। यह कार्य न तो औपचारिक संस्थानों में दर्ज होता है और न ही श्रम–कानूनों या नौकरशाही ढाँचों के अंतर्गत आता है। मार्क्सवादी–नारीवादी दृष्टि से यह स्थिति पूंजीवादी राज्य के लिए असहज है, क्योंकि वह ऐसे श्रम को प्राथमिकता देता है जिसे मापा, नियंत्रित और विनियमित किया जा सके[8]। परिणामस्वरूप समुदाय–आधारित दाई–प्रणालियों को "अनौपचारिक" और "अवैज्ञानिक" घोषित कर उन्हें हाशिये पर धकेल दिया गया।

इस प्रकार दाई–कार्य का अदृश्यकरण तीन स्तरों पर होता है—आर्थिक, वैचारिक और संस्थागत। मार्क्सवादी–नारीवादी विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि दाई–कार्य की उपेक्षा केवल स्त्रियों के श्रम की उपेक्षा नहीं है, बल्कि यह सामाजिक पुनरुत्पादन की उस प्रक्रिया को अदृश्य बनाने का प्रयास है, जिस पर पूरी पूंजीवादी अर्थव्यवस्था निर्भर करती है[9]। अतः दाई–कार्य की दृश्यता और मान्यता का प्रश्न मूलतः श्रम, सत्ता और सामाजिक न्याय के पुनर्परिभाषण का प्रश्न है।

5. भारतीय संदर्भ में महरियाँ: जाति, लिंग और श्रम

भारतीय समाज में महरियों (दाइयों) की सामाजिक स्थिति को समझने के लिए जाति, लिंग और वर्ग—इन तीनों संरचनाओं को एक साथ विश्लेषित करना अनिवार्य है। फील्ड अध्ययनों और उपलब्ध साहित्य से यह स्पष्ट होता है कि अधिकांश महरियाँ दलित, पिछड़ी जातियों और अत्यंत आर्थिक रूप से वंचित समुदायों से आती हैं। दाई–कार्य ऐतिहासिक रूप से उन समुदायों को सौंपा गया है जिन्हें जाति–व्यवस्था में पहले से ही शारीरिक, सेवा–आधारित और "अपवित्र" माने जाने वाले कार्यों से जोड़ा गया था[10]। प्रसव, रक्त, शारीरिक द्रव और स्त्री–शरीर से जुड़ा होने के कारण दाई–कार्य को ब्राह्मणवादी सामाजिक संरचना में निम्न दर्जा दिया गया, जिससे महरियों को सामाजिक सम्मान और पेशागत मान्यता से वंचित रहना पड़ा।

लैंगिक दृष्टि से दाई–कार्य को स्त्रियों का "स्वाभाविक" कार्य मान लिया गया। प्रसव–सेवा को मातृत्व, करुणा और सेवा–भाव से जोड़कर यह मान लिया गया कि इसके लिए विशेष कौशल, प्रशिक्षण या पारिश्रमिक की आवश्यकता नहीं है[11]। इस वैचारिक संरचना ने दाई–कार्य को पेशे के रूप में विकसित होने से रोका और उसे घरेलू–स्तर के अवैतनिक या अल्प–वैतनिक श्रम के दायरे में सीमित कर दिया। परिणामस्वरूप महरियाँ न केवल आर्थिक रूप से असुरक्षित रहीं, बल्कि उनके श्रम को श्रम–अधिकारों और सामाजिक सुरक्षा के प्रश्नों से भी अलग कर दिया गया।

वर्गीय दृष्टि से देखा जाए तो महरियाँ प्रायः गरीबी, अशिक्षा और रोजगार–वंचना की परिस्थितियों में इस कार्य से जुड़ी होती हैं। उनके पास वैकल्पिक आजीविका के सीमित साधन होते हैं, जिससे वे अत्यल्प पारिश्रमिक और असुरक्षित कार्य–स्थितियों को स्वीकार करने के लिए विवश होती हैं[12]। इस प्रकार दाई–कार्य न केवल सामाजिक रूप से अवमूल्यित है, बल्कि आर्थिक रूप से भी शोषण–प्रधान है। भुगतान की अनियमितता, वस्तु–आधारित पारिश्रमिक और सामाजिक सुरक्षा के अभाव ने महरियों को असंगठित श्रम के सबसे कमजोर वर्गों में स्थापित कर दिया है।

मार्क्सवादी–नारीवादी सिद्धांत इस स्थिति को multiple exploitation (बहुस्तरीय शोषण) के रूप में समझता है, जहाँ लैंगिक दमन, जातिगत वर्चस्व और वर्गीय शोषण एक साथ कार्य करते हैं[13]। महरियाँ न केवल स्त्री होने के कारण अवमूल्यित हैं, बल्कि निम्न जाति और गरीब वर्ग से आने के कारण उनके श्रम को और अधिक अदृश्य बना दिया गया है। इस प्रकार भारतीय संदर्भ में दाई–कार्य सामाजिक पुनरुत्पादन का आधार होने के बावजूद, सामाजिक संरचना के सबसे निचले स्तर पर धकेल दिया गया है। यह विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि महरियों का प्रश्न केवल स्वास्थ्य या परंपरा का नहीं, बल्कि जाति–लिंग–वर्ग आधारित सामाजिक न्याय का एक केंद्रीय प्रश्न है।

6. राज्य, स्वास्थ्य–नीति और पुनरुत्पादन संकट

भारतीय राज्य की मातृ–स्वास्थ्य नीतियों का केंद्रबिंदु पिछले दो दशकों में संस्थागत प्रसव को बढ़ावा देना रहा है। राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन (NHM), जननी सुरक्षा योजना (JSY) और इससे संबद्ध कार्यक्रमों का प्राथमिक लक्ष्य मातृ एवं शिशु मृत्यु दर को कम करना रहा है, जिसमें आंशिक रूप से सफलता भी प्राप्त हुई है[14]। अस्पताल–आधारित प्रसव, प्रशिक्षित स्वास्थ्य–कर्मियों की उपलब्धता और वित्तीय प्रोत्साहनों के माध्यम से प्रसव को "सुरक्षित" बनाने की नीति अपनाई गई। किंतु इस प्रक्रिया में परंपरागत दाई–प्रणाली और महरियों की सामाजिक भूमिका को या तो अप्रासंगिक मान लिया गया या पूरी तरह नीति–विमर्श से बाहर कर दिया गया।

राज्य की यह नीति–दृष्टि यह मानकर चलती रही कि आधुनिक स्वास्थ्य ढाँचे के विस्तार के साथ महरियाँ स्वाभाविक रूप से व्यवस्था से बाहर हो जाएँगी। किंतु वास्तविकता यह है कि भारत के अनेक शहरी–गरीब और ग्रामीण क्षेत्रों में महरियाँ आज भी सक्रिय हैं, क्योंकि औपचारिक स्वास्थ्य सेवाओं की पहुँच, गुणवत्ता और वहनीयता समान रूप से उपलब्ध नहीं है[15]। इसके बावजूद राज्य ने महरियों को न

[6] Vogel, L. (1983). Marxism and the oppression of women: Toward a unitary theory. New Brunswick: Rutgers University Press.
[7] Federici, S. (2012). Revolution at point zero: Housework, reproduction, and feminist struggle. Oakland: PM Press.
[8] Fraser, N. (2016). Contradictions of capital and care. New Left Review, 100, 99–117.
[9] Bhattacharya, T. (2017). Social reproduction theory: Remapping class, recentering oppression. London: Pluto Press.
[10] Omvedt, G. (1993). Reinventing revolution: New social movements and the socialist tradition in India. New Delhi: Vistaar.
[11] Rege, S. (2013). Against the madness of Manu: B. R. Ambedkar's writings on Brahmanical patriarchy. New Delhi: Navayana.
[12] National Commission for Enterprises in the Unorganised Sector (NCEUS). (2009). The challenge of employment in India. New Delhi: Government of India.
[13] Bhattacharya, T. (2017). Social reproduction theory: Remapping class, recentering oppression. London: Pluto Press.
[14] Ministry of Health and Family Welfare, Government of India. (2015). National Health Mission: Programme implementation plan. New Delhi.
[15] Jeffery, P., & Jeffery, R. (2010). Only when the boat has started sinking: A maternal death in rural north India. Social Science & Medicine, 71(10), 1711–1718.

तो सहायक स्वास्थ्य–कर्मी के रूप में मान्यता दी और न ही उनके लिए पुनःप्रशिक्षण, वैकल्पिक आजीविका या सामाजिक सुरक्षा की ठोस व्यवस्था विकसित की। परिणामस्वरूप महरियाँ एक ऐसी संक्रमणकालीन स्थिति में फँस गईं, जहाँ उनकी पारंपरिक भूमिका को अवैध या अवांछनीय घोषित कर दिया गया, लेकिन नई स्वास्थ्य–व्यवस्था में उन्हें समाहित नहीं किया गया।

नैंसी फ्रेज़र के सामाजिक सिद्धांत के अनुसार यह स्थिति सामाजिक पुनरुत्पादन संकट (Crisis of Social Reproduction) का स्पष्ट उदाहरण है16। फ्रेज़र का तर्क है कि पूंजीवादी राज्य और बाज़ार दोनों सामाजिक पुनरुत्पादन—जैसे देखभाल, पालन–पोषण और स्वास्थ्य—पर निर्भर तो रहते हैं, किंतु इसके लिए आवश्यक संसाधन, श्रम–समर्थन और सामाजिक अवसंरचना प्रदान नहीं करते। भारतीय संदर्भ में राज्य मातृ–स्वास्थ्य लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए समुदाय–स्तरीय देखभाल–कार्य पर अप्रत्यक्ष रूप से निर्भर रहता है, लेकिन महरियों जैसे पुनरुत्पादन श्रमिकों को अधिकार, मान्यता और सुरक्षा देने से बचता है।

इस प्रकार राज्य की स्वास्थ्य–नीति एक गहरे अंतर्विरोध को उजागर करती है। एक ओर वह सामाजिक पुनरुत्पादन की प्रक्रिया को नियंत्रित और संस्थागत करना चाहता है, वहीं दूसरी ओर वह उन श्रमिकों को अदृश्य बना देता है जो इस प्रक्रिया को वास्तविक रूप में संभव बनाते हैं। मार्क्सवादी–नारीवादी दृष्टिकोण से यह केवल नीति–असफलता नहीं, बल्कि पुनरुत्पादन श्रम के संरचनात्मक अवमूल्यन का उदाहरण है[17]। महरियों की उपेक्षा यह दर्शाती है कि विकास और स्वास्थ्य–नीतियाँ तब तक अधूरी रहेंगी, जब तक वे सामाजिक पुनरुत्पादन के श्रमिकों को केंद्र में रखकर पुनर्गठित नहीं की जातीं।

7. महरियाँ और केयर वर्क की राजनीति

केयर वर्क (Care Work) को ऐतिहासिक रूप से प्रेम, सेवा, त्याग और नैतिक कर्तव्य के साथ जोड़कर प्रस्तुत किया गया है, जिससे इसके आर्थिक और राजनीतिक मूल्य को व्यवस्थित रूप से नकार दिया गया। मार्क्सवादी–नारीवादी विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि यह केवल वैचारिक भ्रांति नहीं, बल्कि एक सुसंगठित रणनीति है, जिसके माध्यम से स्त्री–प्रधान श्रम को अवैतनिक या अल्प–वैतनिक बनाए रखा जाता है[18]। महरियाँ इस केयर वर्क की राजनीति का सबसे स्पष्ट उदाहरण हैं—वे प्रसव के दौरान जीवन–रक्षक भूमिका निभाती हैं, मातृ और शिशु मृत्यु के जोखिम को कम करती हैं, किंतु स्वयं अत्यंत असुरक्षित, अवैतनिक और अधिकार–विहीन स्थिति में कार्य करती हैं।

महरियों के श्रम को "सेवा" के रूप में प्रस्तुत करना उनके पेशागत कौशल और विशेषज्ञता को अदृश्य कर देता है। प्रसव–सेवा को करुणा और मातृत्व से जोड़कर यह मान लिया जाता है कि इसके लिए किसी पेशागत प्रशिक्षण, पारिश्रमिक या श्रम–अधिकार की आवश्यकता नहीं है[19]। इस वैचारिक संरचना में दाई–कार्य को न तो उत्पादक श्रम माना जाता है और न ही इसे सामाजिक सुरक्षा या श्रम–कानूनों के दायरे में लाया जाता है। परिणामस्वरूप महरियाँ ऐसे श्रम–क्षेत्र में कार्य करती हैं, जहाँ उनसे पूर्ण समर्पण और उपलब्धता की अपेक्षा की जाती है, किंतु बदले में उन्हें न्यूनतम सुरक्षा भी प्रदान नहीं की जाती।

नैंसी फ्रेज़र और अन्य नारीवादी राजनीतिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, केयर वर्क का यह अवमूल्यन पूंजीवादी पितृसत्ता की केंद्रीय विशेषता है[20]। पूंजीवाद को श्रम–शक्ति के पुनरुत्पादन के लिए देखभाल–कार्य की आवश्यकता होती है, किंतु वह इस श्रम की लागत स्वयं वहन नहीं करना चाहता। इसलिए इसे परिवार, समुदाय और विशेष रूप से स्त्रियों पर स्थानांतरित कर दिया जाता है। महरियाँ इस संरचना में एक विरोधाभासी स्थिति में फँसी होती हैं—उनका श्रम समाज के लिए अनिवार्य है, किंतु उन्हें न तो श्रमिक के रूप में मान्यता दी जाती है और न ही नागरिक–अधिकारों के रूप में सुरक्षा।

इस प्रकार महरियाँ केयर वर्क की उस राजनीति को उजागर करती हैं, जहाँ स्त्रियों का श्रम आवश्यक तो है, पर अधिकार–योग्य नहीं माना जाता। यह स्थिति यह प्रश्न उठाती है कि क्या जीवन–रक्षक श्रम को केवल नैतिक कर्तव्य के रूप में देखा जाएगा, या उसे आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक अधिकारों से जोड़ा जाएगा[21]। मार्क्सवादी–नारीवादी दृष्टिकोण से महरियों की स्थिति इस बात का प्रमाण है कि जब तक केयर वर्क को श्रम के रूप में मान्यता नहीं दी जाती, तब तक न तो लैंगिक समानता संभव है और न ही सामाजिक न्याय की वास्तविक स्थापना।

8. पुनर्समावेशन की सैद्धांतिक संभावना

मार्क्सवादी–नारीवादी दृष्टिकोण यह स्पष्ट करता है कि महरियों (दाइयों) के पुनर्समावेशन का प्रश्न केवल तकनीकी "प्रशिक्षण" या कौशल–विकास तक सीमित नहीं किया जा सकता। प्रशिक्षण–आधारित समाधान यह मानकर चलते हैं कि समस्या महरियों की दक्षता में है, जबकि वास्तविक समस्या उनके श्रम की सामाजिक और आर्थिक मान्यता के अभाव में निहित है। महरियों का श्रम सामाजिक पुनरुत्पादन की आधारशिला है, अतः उसका पुनर्समावेशन मूलतः श्रम–संबंधों, अधिकारों और सत्ता–संरचनाओं के पुनर्गठन की माँग करता है।

सबसे पहली आवश्यकता है श्रम की मान्यता—अर्थात दाई–कार्य को वास्तविक श्रम के रूप में स्वीकार करना। मार्क्सवादी–नारीवादी सिद्धांत यह तर्क देता है कि पुनरुत्पादक श्रम को "गैर–उत्पादक" मानने की धारणा स्वयं पूंजीवादी विचारधारा का परिणाम है। महरियों को श्रमिक के रूप में मान्यता देना इस धारणा को चुनौती देता है और यह स्थापित करता है कि जीवन के निर्माण से जुड़ा श्रम भी उतना ही मूल्यवान है जितना वस्तु–उत्पादन से जुड़ा श्रम। यह मान्यता ही आगे चलकर न्यूनतम पारिश्रमिक, कार्य–सुरक्षा और श्रम–अधिकारों की वैधता का आधार बनती है।

दूसरा महत्वपूर्ण आयाम है सामाजिक सुरक्षा, गरिमा और अधिकार। महरियों का पुनर्समावेशन तब तक अधूरा रहेगा, जब तक उन्हें स्वास्थ्य बीमा, वृद्धावस्था सुरक्षा, दुर्घटना–सहायता और सम्मानजनक कार्य–परिस्थितियाँ उपलब्ध नहीं कराई जातीं। मार्क्सवादी–नारीवादी दृष्टि से गरिमा केवल नैतिक श्रेणी नहीं, बल्कि एक भौतिक और राजनीतिक प्रश्न है। जब तक महरियाँ असुरक्षा और भय की स्थिति में कार्य करती रहेंगी, तब तक उनका श्रम संरचनात्मक रूप से शोषण–प्रधान बना रहेगा।

तीसरा और सर्वाधिक सैद्धांतिक रूप से महत्वपूर्ण आयाम है ज्ञान की लोकतांत्रिक स्वीकृति। आधुनिक स्वास्थ्य–प्रणाली ने महरियों के अनुभवजन्य ज्ञान को "अवैज्ञानिक" घोषित कर हाशिये पर डाल दिया, जबकि मार्क्सवादी–नारीवादी दृष्टिकोण ज्ञान को सामाजिक रूप से निर्मित मानता है। महरियों के ज्ञान को वैध मान्यता देना न केवल चिकित्सा–विमर्श का विस्तार है, बल्कि यह उस सत्ता–संरचना को चुनौती देना भी है, जो ज्ञान पर अभिजात वर्ग का एकाधिकार स्थापित करती है।

इस प्रकार महरियों को सामाजिक पुनरुत्पादन श्रम की मान्यता देना केवल सुधारात्मक नीति नहीं, बल्कि पूंजीवादी विकास–मॉडल के मूल अंतर्विरोधों को चुनौती देना है। यह पुनर्समावेशन उत्पादन–केन्द्रित विकास की अवधारणा को पुनर्परिभाषित करता है और यह प्रश्न उठाता है कि विकास का उद्देश्य केवल आर्थिक वृद्धि है या जीवन, गरिमा और समानता का संरक्षण। मार्क्सवादी–नारीवादी दृष्टिकोण में महरियों का पुनर्समावेशन एक वैकल्पिक, न्यायपूर्ण और मानव–केन्द्रित सामाजिक व्यवस्था की सैद्धांतिक संभावना को उद्घाटित करता है।

9. निष्कर्ष

यह शोधपत्र इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि महरियाँ (दाइयाँ) सामाजिक

[16] Fraser, N. (2016). Contradictions of capital and care. New Left Review, 100, 99–117.
[17] Bhattacharya, T. (2017). Social reproduction theory: Remapping class, recentering oppression. London: Pluto Press.
[18] Federici, S. (2012). Revolution at point zero: Housework, reproduction, and feminist struggle. Oakland: PM Press.
[19] Tronto, J. C. (1993). Moral boundaries: A political argument for an ethic of care. New York: Routledge.
[20] Fraser, N. (2016). Contradictions of capital and care. New Left Review, 100, 99–117.
[21] Bhattacharya, T. (2017). Social reproduction theory: Remapping class, recentering oppression. London: Pluto Press.

पुनरुत्पादन की वास्तविक आधारशिला हैं, क्योंकि उनका श्रम मानव जीवन के निर्माण, संरक्षण और निरंतरता से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ा हुआ है। इसके बावजूद पूंजीवादी–पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने उनके श्रम को व्यवस्थित रूप से अदृश्य और अवमूल्यित किया है। दाई–कार्य को न तो उत्पादक श्रम के रूप में मान्यता दी गई और न ही उसे सामाजिक–आर्थिक नीतियों के केंद्र में स्थान मिला। परिणामस्वरूप महरियाँ ऐसी स्थिति में कार्य करती रही हैं जहाँ उनकी सेवाएँ अनिवार्य होते हुए भी अनौपचारिक, असुरक्षित और अधिकार–विहीन बनी हुई हैं। यह स्थिति स्पष्ट करती है कि महरियों की उपेक्षा केवल तकनीकी या प्रशासनिक चूक नहीं है, बल्कि सामाजिक पुनरुत्पादन को संचालित करने वाले श्रम की संरचनात्मक उपेक्षा है।

इस संदर्भ में महरियों की स्थिति को केवल स्वास्थ्य–नीति की विफलता के रूप में देखना अपर्याप्त होगा। वास्तव में यह सामाजिक न्याय की व्यापक विफलता को उजागर करती है, जहाँ जाति, लिंग और वर्ग के आधार पर श्रम का मूल्य तय किया जाता है। महरियाँ न केवल स्त्री होने के कारण, बल्कि प्रायः दलित और गरीब समुदायों से आने के कारण भी दोहरे और तिहरे स्तर पर वंचना का सामना करती हैं। उनकी अदृश्यता यह दर्शाती है कि भारतीय समाज और राज्य अब भी उन श्रमिकों को पहचान देने में असमर्थ हैं, जिनका श्रम जीवन–रक्षक होने के बावजूद बाज़ार–केन्द्रित विकास मॉडल के अनुरूप नहीं है।

मार्क्सवादी–नारीवादी दृष्टिकोण से महरियों का प्रश्न मूलतः जीवन, श्रम और गरिमा का प्रश्न है। यह दृष्टि यह स्थापित करती है कि सामाजिक पुनरुत्पादन से जुड़े श्रम को आर्थिक और राजनीतिक मान्यता दिए बिना न तो वास्तविक समानता संभव है और न ही सामाजिक न्याय। महरियों का पुनर्समावेशन केवल स्वास्थ्य–व्यवस्था में तकनीकी समायोजन नहीं, बल्कि श्रम की परिभाषा, मूल्य और अधिकारों के पुनर्परिभाषण की माँग करता है।

अंततः यह अध्ययन इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि महरियों का पुनर्समावेशन भारतीय संविधान में निहित समानता (अनुच्छेद 14), सामाजिक न्याय (अनुच्छेद 15 एवं 16) और मानव गरिमा (अनुच्छेद 21) के मूल्यों की पुनर्स्थापना का मार्ग प्रशस्त करता है। जब तक सामाजिक पुनरुत्पादन के श्रमिकों को अधिकार, सुरक्षा और सम्मान प्राप्त नहीं होगा, तब तक विकास और लोकतंत्र के दावे अधूरे रहेंगे। इस प्रकार महरियों का प्रश्न केवल अतीत की परंपरा का नहीं, बल्कि एक अधिक न्यायपूर्ण और मानवीय भविष्य की संभावना का प्रश्न है।

References

1. Bhattacharya T. Social reproduction theory: Remapping class, recentering oppression. Pluto Press; 2017.
2. Ehrenreich B, English D. Witches, midwives, and nurses: A history of women healers. Feminist Press; 1973.
3. Federici S. Caliban and the witch: Women, the body and primitive accumulation. Autonomedia; 2004.
4. Federici S. Revolution at point zero: Housework, reproduction, and feminist struggle. PM Press; 2012.
5. Fraser N. Contradictions of capital and care. New Left Rev. 2016;100:99–117.
6. Jeffery P, Jeffery R. Only when the boat has started sinking: A maternal death in rural north India. Soc Sci Med. 2010;71(10):1711–1718.
7. Ministry of Health and Family Welfare, Government of India. National Health Mission: Programme implementation plan. Government of India; 2015.
8. National Commission for Enterprises in the Unorganised Sector. The challenge of employment in India. Government of India; 2009.
9. Oakley A. The captured womb: A history of the medical care of pregnant women. Basil Blackwell; 1984.
10. Omvedt G. Reinventing revolution: New social movements and the socialist tradition in India. Vistaar; 1993.
11. Rege S. Against the madness of Manu: B. R. Ambedkar's writings on Brahmanical patriarchy. Navayana; 2013.
12. Tronto JC. Moral boundaries: A political argument for an ethic of care. Routledge; 1993.
13. Van Hollen C. Birth on the threshold: Childbirth and modernity in South India. University of California Press; 2003.
14. Vogel L. Marxism and the oppression of women: Toward a unitary theory. Rutgers University Press; 1983